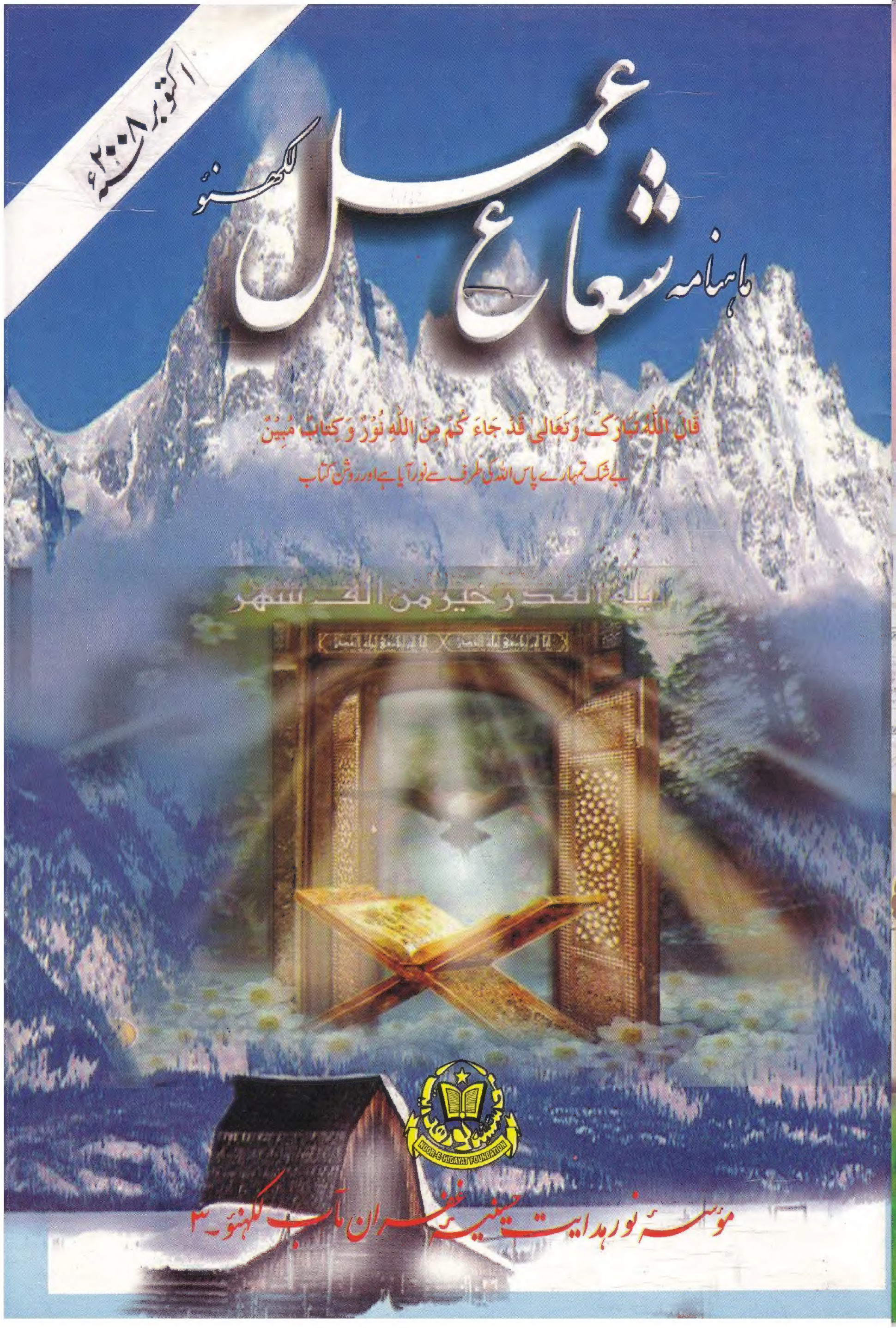

اکتوبر ۲۰۰۸ء
ماہنامہ شعاع عمل لکھنؤ
قَالَ اللّٰہُ تَبَارَکَ وَتَعَالیٰ قَدْ جَاءَ کُمْ مِنَ اللّٰہِ نُوْرٌ وَّ کِتَابٌ مُّبِیْنٌ
بے شک تمہارے پاس اللہ کی طرف سے نور آیا ہے اور روشن کتاب
NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION
مؤسسۂ نور ہدایت حسینیۂ غفران مآب لکھنؤ۔۳

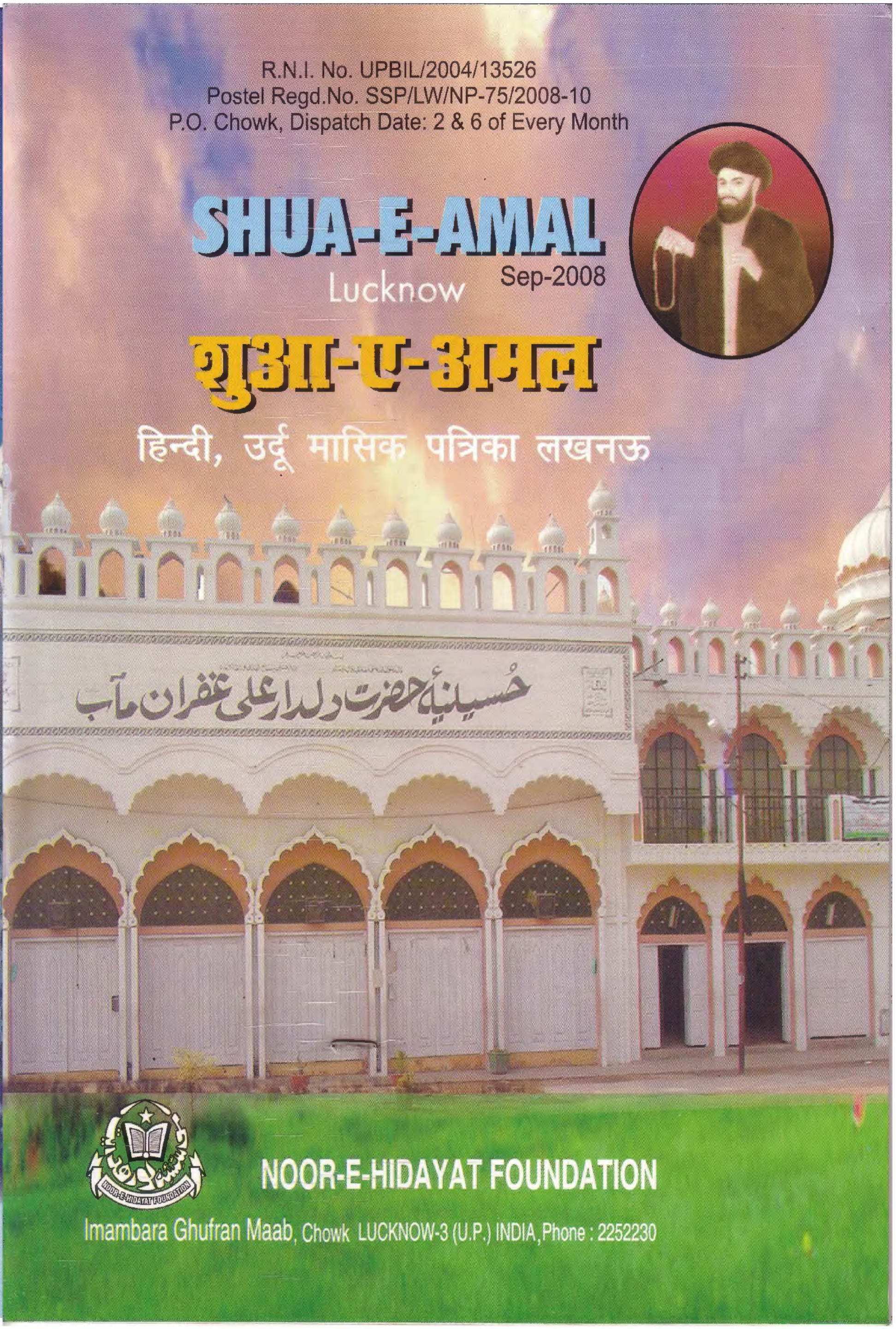

R.N.I. No. UPBIL/2004/13526
Postel Regd.No. SSP/LW/NP-75/2008-10
P.O. Chowk, Dispatch Date: 2 & 6 of Every Month
SHUA-E-AMAL
Lucknow
Sep-2008
शुआ-ए-अमल
हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका लखनऊ
حسینیۂ حضرت دلدار علی غفران مآب
NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION
NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION
Imambara Ghufran Maab, Chowk LUCKNOW-3 (U.P.) INDIA, Phone : 2252230

वर्ष-5

R.N.I. No. UPBIL/2004/13526
Postal Regd No-SSP/LW/NP-75/2008-10
P.O. Chowk. Dispatch Date: 2 & 6 of every month

अंक - 4

अक्टूबर - 2008

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन की
हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका

शुआ-ए-अमल

"लखनऊ"

संरक्षक

मौलाना सै. कल्बे जवाद नक़वी साहब

सम्पादक

सै. मुस्तफ़ा हुसैन नक़वी 'असीफ़' जायसी

सलाहकारी परिषद

प्रोफ़ेसर अल्लामा सै० अली मुहम्मद नक़वी, प्रोफ़ेसर सै० हुसैन कमालुद्दीन अकबर,
प्रोफ़ेसर सै० इमरान हैदर, मु० र० आबिद, सैय्यद समीउल हसन वसीम, तज़हीब नगरौरी

वार्षिक - 200 रु

मिलने का पता

क़ीमत - 20 रु

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन
इमामबाड़ा हज़रत ग़ुफ़रानमआब मौलाना कल्बे हुसैन रोड
चौक लखनऊ - 3 (उ.प्र.) भारत। फोन न० 0522-2252230

सै. कल्बे जवाद नक़वी प्रिन्टर, पब्लिशर और प्रोपराइटर ने मासिक शुआ-ए-अमल (उर्दू, हिन्दी) निज़ामी आफ़सेट प्रेस विक्टोरिया स्ट्रीट लखनऊ से छपवाकर आफ़िस नूर-ए-हिदायत फ़ाउण्डेशन इमामबाड़ा ग़ुफ़रानमआब मौलाना कल्बे हुसैन रोड लखनऊ-3 से प्रकाशित किया। सम्पादक : सै० मुस्तफा हुसैन नक़वी 'असीफ जाएसी'।

फ़ेहरिस्ते मज़ामीन

न०	मज़मून	लेखक	पेज न०
1-	शाह अस्त हुसैन[अ०] बादशाह अस्त हुसैन[अ०]	सैय्यिदुल उलमा के ख़ुतबे	3
2-	फ़ुरू-ए-दीन	मौलाना सै० इब्ने हसन साहब	9
3-	क़ानून का मुहाफ़िज़ उसूल का पाबन्द	मौलाना सै० हसन नक़वी साहब	12
4-	इस्लामिक कैलेण्डर	इदारा	14
5-	मुख्य समाचार	इदारा	15

अक़्वाले हज़रत अली अलैहिस्सलाम

- अपने बच्चों को ऐसी चीज़ें सिखाओ जिन्हें अल्लाह ने उनके लिए फ़ायदेमंद कहा है ताकि वह बेदीन न होने पायें।
- सुस्ती से दूर रहो, जो सुस्ती करेगा वह ख़ुदा के हुक़ूक़ अदा न कर सकेगा।
- मोमिन ख़ुद तकलीफ़ और सख़्ती में रहता है मगर दूसरों को उससे आराम मिलता है।
- काम का वक़्त आने से पहले जल्दबाज़ी से काम न लो वरना शर्मिन्दा होगे।
- वाजिब काम छोड़कर मुस्तहब काम करने में कोई फ़ायदा नहीं।
- जब नमाज़ पढ़ो तो इस तरह पढ़ो कि जैसे यह तुम्हारी आख़री नमाज़ है।
- जो हमें दिल से दोस्त रखे, ज़बान से हमारी हिमायत करे और हमारे साथ जिहाद करे वह जन्नत में हमारे दर्जे में होगा।
- जिस दिन कोई गुनाह न हो वह ईद का दिन है।

शाह अस्त हुसैनअ० बादशाह अस्त हुसैनअ०

सैय्यिदुल उलमा के ख़ुतबे (2)

यह तक़रीर ऑल इण्डिया रेडियो स्टेशन लखनऊ से दस मुहर्रम 1364हि० में प्रसारित हुई।

बेशक हुसैनअ० शाह थे और बादशाह भी थे मगर वह दुनियावी बादशाह न थे। न उस बादशाहत की कभी चाहत रखते थे, न उन्होंने उस बादशाहत के लिए जंग की।

"दुनियावी बादशाह" वह होता है जो ताज व तख़्त रखता हो जो शानो शौकत का मालिक हो जिसके गिर्द फ़ौज और लश्कर जमा रहता हो मगर हुसैनअ० तो उस नाना के नवासे थे जो दो-दो वक़्त भूख से पेट पर पत्थर बाँधा करते थे जिनके घर से कई-कई दिन धुँआ न उठता था। उस माँ के बेटे थे जो अपने घर में चक्की पीसती थी, चर्ख़ा चलाती थी और झाड़ू देती थी। उस बाप के बेटे थे जो बाग़ों में जाकर मज़दूरी करता था और मेहनत व मशक़्क़त करके अपने और अपने बच्चों का पेट पालता था।

उनके नाना अल्लाह के रसूलस० का कुदरती जाहो जलाल इतना ज़्यादा था कि रोम और ईरान के दरबारों को देखने वाले कहते थे कि वहाँ वह रोब व दाब नहीं जो यहाँ नज़र आता है मगर उन्होंने कभी अपने को बादशाह कहा जाना पसन्द न किया। उनके सामने जब एक अरब का रहने वाला आया और हैबत से थरथराने लगा तो उन्होंने कहा संभल जा संभल जा मैं कोई बादशाह नहीं हूँ। मैं तो अरब की एक ग़रीब औरत का बेटा हूँ जो बहुत मामूली खाना खाती थी।

उनकी मुक़द्दस माँ हज़रत फ़ातिमा ज़हरास० पैग़म्बरे इस्लामस० की इकलौती बेटी थीं जो इतनी सख़ी और ख़र्च करने वाली थीं कि घर से किसी साएल को कभी ख़ाली हाथ नहीं लौटाया मगर अपने मुक़द्दस बाप की फ़क़ीराना सीरत की ऐसी पैरवी करती थीं कि दरवाज़े पर एक पुराने पर्दे के सिवा कोई दूसरा पर्दा नज़र न आया। एक ज़माने तक तो घर के काम के लिए कोई कनीज़ या नौकरानी ही नहीं थी। जब एक कनीज़ जिसका नाम फ़िज़्ज़ा था पैग़म्बर ने घर के काम-काज के लिए दी तो यह हिदायत कर दी कि एक दिन घर का काम तुम करना एक दिन फ़िज़्ज़ा से लेना हज़रत फ़ातिमास० ने हमेशा इसी पर अमल किया।

हुसैनअ० के बुलन्द मर्तबा बाप हज़रत अली मुर्तज़ाअ० इस्लाम के सबसे बड़े कमाण्डर, सबसे बड़े फातेह, पैग़म्बरे ख़ुदास० के वज़ीर और मुसलमनों के सरदार थे, जिन्हें रसूलस० ने ख़ुद अमीरुलमोमिनीन का ख़िताब दिया था और जिन्हें आज तक बच्चा-बच्चा जनाबे अमीर के नाम से याद करता है मगर इस सरदारी के बाद भी ग़रीबी की ज़िन्दगी गुज़ारते थे ऐसी के भूसी मिला हुआ जौ का आटा खाने में खाते थे और पेवन्द लगे कपड़े पहनते थे ऐसे नाना की गोद में पल कर ऐसी माँ की परवरिश उठाकर और ऐसे बाप की तालीमात हासिल करके अपनी ख़ुद की बनाई हुई बुलन्द फ़ितरत के साथ-साथ हुसैनअ० का मिज़ाज भी फ़क़ीराना न होता तो और क्या होता। मेहरबानी, बुज़ुर्गी और ख़ूबसूरती की शान उनमें उनके ख़ानदान जैसी थी मगर शाही ग़ुरूर और घमण्ड, शाही जाह व हशमत, शाहाना तनतना न तमतराक़ और सबसे ज़्यादा शाही सियासत की धोखेबाज़ी से उनको दिली नफ़रत थी। और इस बुनियाद पर न वह बादशाह थे न अपने को बादशाह समझते थे न दूसरों की ज़बान से बादशाह कहे जाने को पसन्द करते थे।

वह उस बादशाहत के कभी तालिब नहीं हुए उस वक़्त जब हज़रत इमाम हसनअ० ने मुआविया से मुसालेहत करके तख़्ते सलतनत उसके हवाले कर दिया तो बहुत से आदमी अच्छे-अच्छे मुमताज़ दर्जे के लोग हज़रत इमाम हुसैनअ० से कह रहे थे कि आप खड़े हो

जाइये हम आपकी मदद करेंगे।

अगर आपके दिल में सलतनत की कोई चाहत होती तो यह बहुत अच्छा मौक़ा था मगर आपने इन्कार किया फिर उस वक़्त कि जब हज़रत इमाम हसन[अ०] की वफ़ात हो गई तो लोग फिर हज़रत इमाम हुसैन[अ०] के पास आये और कहा कि अब खड़े हो जाइये। हज़रत ने फिर भी इन्कार कर दिया और बराबर ख़ामोशी की ज़िन्दगी गुज़ारते रहे इससे साफ़ ज़ाहिर है कि हज़रत इमाम हुसैन[अ०] ने दुनियावी सलतनत कभी नहीं चाही।

आपने उस बादशाहत के लिए जंग भी नहीं की। जब आप उसके तालिब ही नहीं थे तो उसके लिए जंग क्या करते? इसके अलावा यह आपके क़ौल व अमल दोनों से नज़र आता है।

अगर आप बादशाहत के लिए जंग करना चाहते तो उसी वक़्त जब आपको साबिक अमीरे शाम की वफ़ात और यज़ीद के तख़्ते सलतनत पर बैठने की ख़बर हुई है और मदीने के हाकिम ने आपको बैअत के लिए बुलाया उसी वक़्त मदीने के हाकिम पर हमला कर देते। मदीने पर क़ब्ज़ा कर लेते और फिर अपनी हुकूमत को बढ़ाते हुए यज़ीद से जंग करते। जबकि अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर के लिए यह मुमकिन हो कि वह हिजाज़ व इराक़ ही में अपनी सलतनत क़ायम करके काफ़ी ज़माने तक शाम की हुकूमत से लड़ते रहें तो हुसैन[अ०] के लिए ऐसा क्यों नहीं मुमकिन था हालांकि आप मुसलमानों के दिलों पर अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर के ज़्यादा इक़्तेदार रखते थे।

इसके बाद जब मक्का में आप पहुँचे तारीख़ बतलाती है कि उस वक़्त लोगों ने अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर के पास आना जाना छोड़ दिया और इमाम हुसैन[अ०] के पास रहने लगे मगर आपने किसी इक़्तेदार की चाहत में उस जमाअत से मदद हासिल करने की ज़रूरत नहीं समझी।

उस वक़्त जब कूफ़े के लोगों ने मज़हबी हिदायत की ग़रज़ से आपको कूफ़े आने की दावत दी तो उन्होंने यह लिखा कि अगर आप आइये तो हम शाम की हुकूमत के गवर्नर को निकाल दें और तख़्ते सलतनत पर क़ब्ज़ा कर लें मगर आपने उनको लिखा कि इमाम का काम सिर्फ़ इतना है कि शरीअत के अहकाम को नाफ़िज़ करे। फ़राएज़े हिदायत को अन्जाम दे और ख़ुदा की तालीमात से बिल्कुल न हटे। इसका मतलब यह था कि मुझे राजधानी या तख़्ते सलतनत की कोई ज़रूरत नहीं है मैं तो सबकी हिदायत और ख़ुदा के अहकाम की तबलीग़ करना चाहता हूँ।

इसी का नतीजा है कि जनाब मुस्लिम बिन अक़ील[अ०] जो हज़रत के नुमाइन्दे होकर कूफ़ा भेजे गये तो उन्होंने ख़ामोशी के साथ एक दोस्त के मकान पर क़याम कर लिया और कोई कोशिश इस बात की नहीं की कि कूफ़े के हाकिम को कूफ़े के तख़्त से हटा दें या राजधानी पर क़ब्ज़ा कर लें।

फिर जबकि न वह बादशाह थे, न बादशाहत के कभी तालिब हुए। न बादशाहत के लिए उन्होंने जंग की तो उन्हें शाह और बादशाह कहने का क्या मतलब यह भी समझने की बात है कि शाह मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी ने अपनी रुबाई में यह दो लफ़्ज़ें एक साथ लिखी हैं:

शाह अस्त हुसैन[अ०] बादशाह अस्त हुसैन[अ०]
दीन अस्त हुसैन[अ०] दीं पनाह अस्त हुसैन[अ०]
सर दाद नदाद दस्त दर दस्ते यज़ीद
हक़्क़ा के बिनाए ला इलाहा अस्त हुसैन[अ०]

तो क्या शाह और बादशाह दोनों के एक ही माने हैं। इसके माने यह होंगे कि यह दो लफ़्ज़ें सिर्फ़ ज़रूरते शाएरी से मिसरे को पूरा करने के लिए लाई गई हैं बहुत से लोग ऐसा ही समझते हैं हक़ीक़त में ऐसा नहीं है।

जनाब ख़्वाजा ग़रीब नवाज़ ने जिनका मज़ार अजमेर में ज़ियारतगाहे जमहूर है हज़रत शहीदे कर्बला इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम की बारगाह में जो अक़ीदत का नज़राना पेश किया है वह कोई मामूली क़द्र व क़ीमत नहीं रखता।

यह और बात है कि आज जब दुनिया सतही और माद्दी उलूम की दीवानी होकर हक़ीक़त और इल्मे बातिन से कोसों दूर जा पड़ी है तो वह उन बुज़ुर्ग अफ़राद की गहरी बातों की तहों तक न पहुँच कर एतेराज़ पर उतर आई है।

हक़ीक़त यह है कि शाह और बादशाह दोनों के अलग-अलग मानी हैं और दोनों के मिलने से शहीदे कर्बला की शख़्सियत और आपके बुलन्द किरदार पर जो तेज़ रौशनी पड़ती है वह कभी उनमें से एक लफ़्ज़ से नहीं पड़ सकती थी।

ग़ौर कीजिये तो इन्सान आँखें खोलकर अपने आस-पास पर जब नज़र डालता है तो हर तरफ़ माद्दी जिस्म, माद्दी हालात और अनासिर से बनी हुई शक्लें उसकी आँखों के सामने आती हैं। वह मुहब्बत करना चाहता है तो

माद्दी अस्बाब के बनाए हुए रिश्ते उसकी मुहब्बत को जज़्ब कर लेते हैं। बचपने में माँ-बाप भाई को पहचाना और उनकी मुहब्बत दिल में बैठी। जवान हुआ तो जज़्बात के धारे में बह कर बहुत से बेगानों से मुहब्बत करने लगा कभी ज़ाती फ़ायदे और इनाम व अता की लालच में किसी का क़रीबी हो गया। उस वक़्त दुनिया अपनी तमाम दिल फ़रेबियों के साथ उसकी आँखों के सामने होती और वह इस काएनात की ख़ूबसूरती में खो जाता है।

वह देखता है तो माद्दी निगाह से, सुनता है तो माद्दियत के कानों से, कामयाबी समझता है तो उसी दुनिया के ज़ाहिरी इक़्तेदार को, मुहब्बत करता है तो वक़्ती फ़ायदों और सामने की दिलरुबा सूरतों को देखकर और नफ़रत करता है तो इसी दुनिया के नुक़सानों और नगवार बातों के एहसास से।

ख़्वाहिश की पूजा और हुकूमत पसन्दी और फिर आख़िर में दहरियत, इलहाद और माद्दा परस्ती सब उसी पहली निगाह में जज़्ब हो जाने के मुख़तलिफ़ दर्जे हैं।

इस सूरत में बादशाहत अगर होगी तो वह नाम होगा कमज़ोरों को ग़ुलाम बनाने का, फ़क़ीरों को अपना ग़ुलाम और क़ैदी बनाने का और दूसरों का ख़ून चूस कर पेट भरने का, हीला, मक्र और फ़रेब जिस तरह से अपना काम निकालेगा जिसको कहा जाता है मुलूकाना सियासत।

यही वह सलतनत थी जिससे मुहम्मद और आले मुहम्मद हमेशा अलग रहे, न वह बादशाह बने न इस बादशाहत के तालिब हुए न इसके लिए कभी जंग की।

मगर दूसरा दर्जा इन्सान की नज़र व फ़िक्र का यह है कि वह किसी ख़ूबसूरत चीज़ को देखकर उसके बनाने वाले की तरफ़ मुतवज्जह हो, वह अपने आस-पास की काएनात पर ग़ौर करे उस बुलन्द ताक़त की तरफ़ मुड़ जाए जो उन तमाम काएनात की पैदा करने वाली और उन सबके बाक़ी रखने और तरबियत करने वाली है।

जब इन्सान दिल की आँखों से इधर देखेगा तो इमकान की हदों से बढ़कर बिजलियाँ नज़रों के सामने कोंदने लगेंगी वह जमाल नज़र आएगा जिसके मिस्ल कोई जमाल आँख ने कभी देखा नहीं। वह अज़्मत महसूस होगी जिसके मिस्ल किसी अज़्मत ने दिल पर कभी असर नहीं डाला इस दर्जे तक पहुँचने का तक़ाज़ा यह है कि इन्सान दुनिया की हर चीज़ से आँख बन्द कर ले हर शै से रिश्ता तोड़ ले। न कोई हुस्न अपनी तरफ उसके दिल को माएल कर सके, न कोई ख़ौफ़ उसके दिल को मरऊब कर सके, न कोई दिलकश मुरक़्क़ा उसकी नज़र को अपनी तरफ़ मोड़ सके। बीवी, बच्चे, भाई बहन अज़ीज़ अक़ारिब किसी से उसकी दिलबस्तगी न हो। वह पहाड़ों की ऊँची-ऊँची सतहों पर ग़ारों की अंधेरी गहराईयों के अन्दर जंगल की वसीअ़ फ़िज़ाओं में उसी एक मरकज़े हुस्न की याद में डूबा रहे कि जिससे ज़्यादा हसीन जलवा उसे कहीं नज़र नहीं आ सकता।

जो इस दर्जे पर पहुँच जाए उसको सूफ़ियों की ज़बान में "शाह" कहते हैं। इसी में धीरे-धीरे इन्सान तरक़्क़ी करता है और आख़िर में ख़ुदा की राह में फ़ना हो जाता है। और एक तबक़ा है कि जो इसी को इन्सानियत की मेराज तसव्वुर करता है मगर ग़ौर की नज़र से देखा जाए तो यह दर्जा इन्सान की ज़िन्दगी का आख़री मक़सद नहीं बन सकता क्योंकि इस दर्जे में इन्सान के अन्दर इन्फ़ेरादियत और तवह्हुद यानी तनहाई का एहसास नुमायाँ नज़र आता है। हालांकि इन्सान फ़ितरी तौर पर तमद्दुनी ज़िन्दगी का हामिल है किसी शै का नुक़तए कमाल वह नहीं हो सकता जो उसकी अस्ली फितरत के साथ टकराव करे बल्कि ऐसा नुक़तए कमाल वह होगा कि जिसमें नज़री ख़ासियत हकीमाना तरबियत के साथ ज़्यादा फ़ायदेमन्द और मुनज़्ज़म शक्ल में दिखाई दे।

ग़ौर करने से मालूम होता है कि यह दर्जा भी एक दरमियानी मंज़िल है जहाँ रुक जाना सालिक के हौसले की पस्ती का नतीजा है वह जमाले मुतलक़ कि जहाँ उसकी निगाह जाकर जमी है और उसके जलवों में ग़र्क़ हो गई है एक अलग थलग हस्ती नहीं है जिसका कुछ ताल्लुक़ इस काएनात के साथ न हो बल्कि ख़ालिक़ राज़िक़ मुरब्बी और अस्ल मरकज़े फ़ैज़ और सरचश्म-ए-वजूद होने की बिना पर उसे इस काएनात के साथ और काएनात का उसके साथ ख़ास ताल्लुक़ है। वह उसकी वुस्अते रहमत से जो हर हर फ़र्द पर छाई हुई है इन्सान अगर सही मानों में किसी के साथ मुहब्बत रखता है तो हर उस चीज़ के साथ मुहब्बत होना भी ज़रूरी है जिसे उस महबूब के साथ ताल्लुक़ हो और हर उस मफ़ाद को अज़ीज़ रखना ज़रूरी है जो उसके महबूब को मद्देनज़र हो और इसलिए अगर इन्सान हक़ीक़ी माने में इश्क़े इलाही के दर्जे तक पहुँचता है तो वह

ख़लाएक़ से जुदा हो नहीं सकता बल्कि अगर जज़्बए इश्क़ ने महज़ वारफ़्ता नहीं बना दिया है और उसे महबूब की निगाहों का भी ख़याल है और उसकी मर्ज़ी भी मन्ज़ूरे नज़र है तो वह अल्लाह तक पहुँचने के बाद फिर एक बार वापस आएगा उस ख़ल्क़ की तरफ़ मगर अपनी मुहब्बत की आग़ोश को इतना कुशादा करके जो अल्लाह की वुस्अते रहमत के साथ साज़गार हो सके और इन फ़राएज़ को पेशे नज़र रखते हुए जो एहतियात ज़िन्दगी के कामियाब बनाने के लिए उसके ख़ुदा को पसन्द हैं अब उसे अल्लाह के साथ वह इश्क़ भी है जो एक शाह यानी आरिफ़ कामिल को होना चाहिए और ख़ल्क़ के साथ वह ताल्लुक़ भी है जो एक बादशाह को अपनी रिआया के साथ हमागीर तौर पर होना चाहिए। पहली मंज़िल में यानी माद्दा परस्ती के दौर में अगर इन्सान को दुनिया वालों पर हुकूमत हासिल हुई वह जिसका नाम है बादशाही तो हर वक़्त अपनी हुकूमत की गिरफ़्त को मज़बूत रखने की कोशिश करेगा अपने असर को बढ़ाने में मसरूफ़ रहेगा। अपने अज़ीज़ों दोस्तों और ख़ुशामद करने वालों को हर तरह के फ़ाएदे पहुँचाने का मक़सद सामने रहेगा। और कमज़ोरों की आज़ादी को ख़त्म करने में लज़्ज़त महसूस करेगा और यही कोशिश रहेगी कि-

"जहाँ में जहाँ तक जगह पाइये
इमारत बनाने चले जाइये"

लेकिन शाही की मंज़िल तक पहुँच जाने के बाद इन्सान को आम्मए ख़लाएक़ से जो ताल्लुक़ पैदा होगा उसमें सभी का फ़ायदा और आराम हर वक़्त सामने रहेगा। कमज़ोरों को मदद पहुँचाना नुक़तए निगाह रहेगा। गिरते हुओं को संभालने, डूबते हुओं को निकालने और तबाह हाल अफ़राद को बचाने की कोशिश होगी। यहाँ अपने और पराए की तमीज़ न होगी, बल्कि अपना सगा भाई भी हक़ से ज़्यादा तलब करेगा तो उसकी बात रद्द कर दी जाएगी चाहे वह उस पर ख़फ़ा ही क्यों न हो जाए बल्कि आइन व क़ानून के मामले में बेटों तक की रिआयत न होगी। हर वक़्त हक़ परवरी और फ़र्ज़ शनासी से मतलब होगा। यह होगी वह बादशाहत जो शाह होने के साथ हो और ऐसा ही इन्सान हक़ीक़त में इन्साफ़ करने वाला बादशाह हो सकता है चाहे ताज व तख़्त न रखता हो और और ज़ाहिरी शानो शौकत उसके पास मौजूद न हो।

आप अगर पहली क़िस्म के बादशाहों को ढूँढना चाहें तो बहुत से नमरूद, "फ़िरऔन और यज़ीद इसकी मिसाल पेश करने के लिए आपकी आँखों के सामने आ जाएंगे और अगर ऐसे शाह ढूँढना चाहें जो बादशाह नहीं हैं तो बहुत से दुरवेश, फ़क़ीर और तारिकुद्दुनिया तारीख़ के पन्नों पर और शायद कहीं-कहीं देखने में भी आपके सामने आ जाएं लेकिन अगर आप शाह होने के साथ बादशाह होने की मिसाल तलाश कीजिये तो आपको पैग़म्बरे इस्लाम और उनके हक़ीक़ी पैरवों में मिल सकती है और रसूल[स०] के अहलेबैत[अ०] इसका बेहतरीन नमूना हैं उनकी शाही देखना हो तो मेहराबे इबादत में देखिये और उनके अलफ़ाज़ में मारेफ़त के दरया बहते हुए देखकर अन्दाज़ा कीजिये और बादशाही देखना हो तो मजमए अस्हाब में देख लीजिये। मस्नदे क़ज़ा पर देख लीजिये या ग़रीबों और मुहताजों की सदा पर उनके तड़प जाने, ज़रूरतमन्दों की आवाज़ पर उठ खड़े होने और हर एक की ज़रूरत को फ़ौरन पूरी करने की कोशिश बल्कि कभी-कभी ग़रीबों के घर पर जाकर रातों के पर्दे में उनकी ख़बर लेने और मदद करने के मन्ज़र को देखिये।

हुसैन[अ०] उन्ही पैग़म्बरे इस्लाम[स०] के नवासे थे जिन्होंने ख़ालिक़ और मख़लूक़ के रिश्तों के इस इरतेबात का दुनिया को सबक़ दिया।

उन्होंने जिन सख़्त वक़्त में और कठिन मंज़िलों पर शाही और बादशाही के हुदूद को निबाहा है उसकी मिसाल तारीख़े इन्सानियत में नहीं मिलती है।

मौक़ा नहीं कि उनकी ज़िन्दगी की सीरत के वाक़ेओं से पूरी तरह पर इसका सुबूत पेश किया जाए मगर सिर्फ़ कर्बला की सरज़मीन पर मुहर्रम की दसवीं तारीख़ में आपने जिस-जिस तरह इसका नमूना पेश किया वह अपनी मिसाल आप है।

आशूर की अंधेरी रात जबकि तबाही की डरावनी परछाइयाँ हर तरफ़ फिरती नज़र आती थीं। मौत का फ़रिश्ता फ़ज़ा में अपने परों को खोले साया किये था। और सलामती की उम्मीद के धुंधले नुक़ूश भी धीरे-धीरे मिटते जा रहे थे बल्कि बिल्कुल मिट चुके थे। कोई दीनदार इन्सान होता तो यह रात अज़ीज़ों से दिल भरकर रुख़सत होने में ख़र्च करता। अपने पसमान्दगान को अपने बाद के लिए वसीयतें करता और कम से कम जंग की तदबीरों में मशवरे करता मगर हुसैन[अ०] कामिल "शाह" थे इसलिए उन्होंने अपना मुसल्ला बिछा दिया।

उनके साथ वालों के भी मुसल्ले बिछ गए और पूरी रात सिर्फ़ ख़ुदा की इबादत में गुज़ारी।

इसी के साथ हुसैन[अ॰] बादशाह थे इसीलिए उन्हें यह फ़िक्र थी कि अगर साथ वाले ज़मीर की इजाज़त से अपनी जानें बचाना चाहें तो मेरे साथ अपनी जानें क्यों दें। इसलिए उन्होंने ख़ुदा की इबादत की मसरूफ़ियत के अन्दर इतना वक़्त भी निकाला कि उन सबको जमा करके यह इजाज़त दी कि तुम लोग मेरा साथ छोड़कर चले जाओ और इस रात के अंधेरे के पर्दे में मुझसे अलग हो जाओ क्योंकि दुश्मन को तो मेरी जान से मतलब है तुमसे सरोकार नहीं है तुम अपनी जान मेरी वजह से क्यों दो?

इतना ही नहीं कि उन्होंने आम तौर से यह एक तक़रीर कर दी बल्कि ख़ास तौर पर एक साथी के लिए जब यह सुना कि उनका बेटा सरहद पर गिरफ़्तार हो गया है तो उन्हें बुलाकर कहा कि तुम ख़ास तौर पर मेरी बैअत से आज़ाद हो जाओ और अपने बेटे की रिहाई की फ़िक्र करो। जब वह किसी तरह साथ छोड़ने के लिए तैयार न हुए तो आपने एक क़ीमती लिबास उनके हवाले किया कि उसे अपने दूसरे बेटे के साथ भेजो कि वह जाकर फरोख़्त करे और अपने भाई को छुड़ाने का इन्तिज़ाम करे।

क्या कर्बला के ऐसे हौलनाक मौक़े पर अपने साथियों के दुख-दर्द और तकलीफ़ का इतना ख़याल किसी मामूली इन्सान को हो सकता है।

रोज़े आशूर की क़ुर्बानियों में भी यह दोनों बातें ख़ास तौर पर नुमायाँ थीं। हुसैन[अ॰] हक़ की ख़ातिर अपने अज़ीज़ तरीन दोस्तों और भाईयों भतीजों और बेटों को ख़ुशी-ख़ुशी तलवारों के अन्दर भेज रहे थे क्योंकि वह शाह थे। अल्लाह की मर्ज़ी के सामने दुनिया का कोई रिश्ता अज़ीज़ न था मगर उनकी जुदाई पर रोते भी थे। उनका ग़म भी करते थे और उनकी लाशें मक़तल से उठा-उठाकर लाते थे इसलिए कि वह बादशाह भी थे यानी मख़लूक़ात के साथ ताल्लुक़ और मुहब्बत रखते थे।

सबसे ज़्यादा सख़्त मौक़ा हुसैन[अ॰] की ज़िन्दगी का वह आख़री वक़्त है जब वह ज़ख़्मों से चूर थे। कर्बला की गर्म ज़मीन और उस वक़्त क़ातिल का क़रीब आना ख़न्जर का नियाम से निकलना और हुसैन[अ॰] का सजदा-ए-ख़ालिक़ में पेशानी रखे होना, दोपहर की धूप से जलती हुई रेत और ज़ख़्मी पेशानी यह शाही की बुलन्द तस्वीर है।

क़ातिल सुनता है कि हुसैन[अ॰] कुछ कह रहे हैं। कान क़रीब ले गया तो कमज़ोरी से थर्राई हुई आवाज़ में यह अलफ़ाज़ सुनाई देते हैं कि ऐ ख़ुदा मैंने अपने इमकानी फ़र्ज़ को पूरा किया अब यह तेरा काम है कि तू मेरे नाना की उम्मत को अज़ाब से नजात दे।

यह था बादशाही का तक़ाज़ा जिसे हुसैन[अ॰] आख़िर वक़्त तक निभा गए बिल्कुल सच है कि शाह अस्त हुसैन, बादशाह अस्त हुसैन

न ऐसी शाही कहीं नज़र आ सकती है और न बादशाही नज़र आ सकती है।

वल्लाह कि ऐ हुसैन[अ॰] कारे करदी।

दीं पनाह अस्त हुसैन[अ॰]

> आयतुल्लाहिल उज़्मा सैयिदुल उलमा की वह तक़रीर जो 7 मुहर्रम 1366[हि॰] को रेडियो स्टेशन लखनऊ से प्रसारित हुई

कोई शक नहीं कि अल्लाह का दीन जिसे इन्सानों तक पहुँचाने के लिए पैग़म्बर भेजे गए। किताबें उतारी गईं, शरीअतें जारी की गईं। जिसकी ख़ातिर नूह[अ॰] ने तकलीफ़ें उठाईं, इब्राहीम[अ॰] ने सख़्तियाँ झेलीं, मूसा[अ॰] ने मुसीबतें बर्दाश्त कीं और ईसा[अ॰] ने मुख़ालिफ़तों का मुक़ाबला किया। वह दीने इलाही जिसके पहुँचाने में मुहम्मद मुस्तफ़ा[स॰] ने सदमे सहे, ज़हमतें गवारा कीं, दिल पर ज़बान के और जिस्म पर पत्थरों के ज़ख़्म खाए वह दीन जिसकी हिफ़ाज़त में हमज़ा काम आए, उबैदा बिनुल हारिस बिन अब्दुल मुत्तलिब ने जान दी, हमज़ा का जिगर चाक हुआ, जाफ़र के हाथ काटे गए और अली[अ॰] उम्र भर जेहाद करते रहे।

उस वक़्त चारों तरफ़ मददगार की तलाश में आँखें फ़ाड़-फ़ाड़ कर देखता और हालात की ज़बान में पुकार-पुकार कर कह रहा था *"हल मिन नासिरिन यन्सुरनी"* कोई मददगार है ऐसा जो मेरी मदद करे, जब 60[हि॰] में दमिश्क़ के तख़्ते सलतनत पर यज़ीद हुक्मरान हुआ और इमाम हुसैन[अ॰] से बैअत का तलबगार हुआ।

हुसैन[अ॰] ख़ूब समझते थे कि मुझ से बैअत तलब करने से उसका मक़सद क्या है। अगर सिर्फ मुल्के अरब के एक रहने वाले या क़ुरैश की नस्ल की एक फ़र्द की हैसियत से बैअत तलब की जा रही होती तो उसमें इतनी उठापटक की ज़रूरत न थी। जबकि तमाम मुल्के

अरब और हिजाज़ के सारे रहने वाले यज़ीद की बैअत कर चुके थे तो एक हुसैन[अ०] ने अगर बैअत न भी की थी तो उसूले जमहूरियत पर यज़ीद की सलतनत का क्या बिगड़ता था। एक फ़र्द और वह भी दुनिया से दूर, इज़्ज़त बचाने वाला और अलग रहने वाला, दुनिया के शोर व बुराई से अलग-थलग ख़ामोश रहने वाला।

हुसैन[अ०] का कोई दोस्त नहीं दुश्मन भी यह नहीं बयान कर सका कि हुसैन[अ०] ने अपने मदीने के क़याम में कोई तक़रीर शाम की हुकूमत के ख़िलाफ़ की, कभी कोई ख़त व किताबत की किसी तरह की भी कोशिश यज़ीद के मुक़ाबले पर की हो या किसी सूरत पर भी साकिन फ़ज़ा को मुतहर्रिक बनाना चाहा तो। फिर सिर्फ़ एक मन्फ़ी (Negative) तर्ज़े अमल यानी बैअत न करना यज़ीद को क्या नुक़सान पहुँचा सकता था जबकि अरब में कितनी ही बड़ी कान्फ्रेंसें यज़ीद की बैअत लेने के लिए हुई हों कितने ही बड़े पैमाने पर इस तहरीक का सबको पाबन्द बनाया गया हो लेकिन हज़ारों आदमी इस मुल्क के फिर भी ऐसे होंगे जिनसे न यज़ीद की बैअत का मुतालबा हुआ न उन्होंने बैअत करने का कोई मुज़ाहेरा किया।

खुद बनी हाशिम के ख़ानदान में अब्दुल्लाह बिन जाफ़र भी तो थे। मुहम्मद बिन हनफ़िया भी तो थे। उमर बिन अली[अ०], औन बिन अली[अ०] और हुसैन[अ०] बिन अली[अ०] के दूसरे भाई भी तो थे। उनमें से किसी एक से बैअत का मुतालबा ज़रूरी नहीं समझा गया, बस सिर्फ़ हुसैन[अ०] वह थे जिन पर यज़ीद की तमाम कोशिशें मरकूज़ हो गईं कि आपसे बैअत ली जाए।

इसी से साफ़ ज़ाहिर था कि हुसैन[अ०] से बैअत का माँगना अरब के एक शख़्स और हिजाज़ के एक रहने वाले और कुरैश या बनी हाशिम की एक फ़र्द की हैसियत से नहीं है बल्कि आपसे बैअत का माँगना इस खुसूसियत के लेहाज़ से है कि हुसैन[अ०] रसूल[स०] के ख़ानदान की अज़मत के नुमाइन्दे, अली[अ०] के जानशीन और हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स०] के क़ायम मक़ाम हैं। हुसैन[अ०] से बैअत लेने का मतलब यह था कि इस्लाम के बानी हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स०] की बारगाह से यज़ीद अपने कामों पर तस्दीक़ की मुहर लगवा ले और इस तरह दुनिया को इस ग़लतफ़हमी में मुबतिला करे कि यज़ीद का चलाया हुआ समाजी क़ानून और हुकूमत हक़ है। इस लिए हुसैन[अ०] से बैअत का मुतालबा किया गया हुसैन[अ०] ने अपने मौक़े की नज़ाकत महसूस कर ली।

उन्होंने समझ लिया कि मेरी बैअत के माने यह है कि अली[अ०] ने बैअत की और मेरी बैअत के माने यह हैं कि मुहम्मद मुस्तफ़ा[स०] ने इस निज़ाम को मान लिया और मेरी बैअत के माने यह हैं कि हक़ बातिल के सामने, सच झूठ के सामने और दीन लादीनी के सामने हमेशा के लिए झुक गया। हुसैन[अ०] जानते थे कि बैअत न करने का अन्जाम क्या होगा मगर वह जैसे महसूस कर रहे थे कि इस वक़्त दीने इस्लाम की नज़र मेरे चेहरे पर है और यह देख रहा है कि मेरी हिफ़ाज़त की ख़ातिर हुसैन[अ०] किसी ईसार व कुर्बानी पर तैयार हो सकते हैं या नहीं।

हुसैन[अ०] जानते थे कि यह वह दीन है जो मेरे मालिक, मेरे माबूद और मेरे ख़ालिक़ की अमानत है इसलिए बहैसियते मख़लूक़, बहैसियते अब्द और बहैसियत ममलूक मुझे उसकी हिफ़ाज़त ज़रूरी है। यह मेरे नाना मुहम्मद रसूलुल्लाह[स०] की तमाम उम्र की तकलीफ़ों ज़हमतों और कोशिशों का नतीजा है इसलिए फ़रज़न्दे रसूल[स०] होने की हैसियत से मुझे इसकी हिमायत लाज़िम है। और इस दीन की मज़बूती मेरे बाप अली मुर्तज़ा[अ०] की तलवार का नतीजा है इसलिए अली[अ०] के जानशीन होने की हैसियत से भी मुझ ही को सीनासिपर होना चाहिए।

कोई शक नहीं कि दीने इस्लाम उस वक़्त बेकसी और बेबसी के आलम में था उसकी आईन (क़ानून) और उसकी तालीम को शाम से निकाला जा रहा था। इराक़ में कोई उसकी हिफ़ाज़त का मरकज़ न था और हिजाज़ में कोई पनाह न थी सब तरफ से नाउम्मीद होकर वह दीन हुसैन[अ०] के दामन में पनाह ले रहा था और हुसैन[अ०] ने यह तै कर लिया कि मैं जान दूँगा मगर इस दीन को बचाऊँगा। सिर्फ़ जान ही नहीं जान को राहे खुदा में मुजाहिद देते रहे थे बल्कि जान से ज़्यादा अज़ीज़ दिल के टुकड़े भी कुर्बान किये जाएंगे। और इससे बढ़कर इस्मत के पर्दे में रहने वाली औरतों को क़ैद व बन्द की मुसीबतों के लिए भी दीन के लिए बेपर्दा किया जाएगा।

हुसैन[अ०] ने अपनी कुर्बानी भी 61[हि०] में मुहर्रम के महीने में जुमा के दिन और दसवीं तारीख़ कर्बला के मैदान में पेश कर दी। शहीदों के लाशे ज़मीन पर थे हुसैन[अ०] के ख़ेमों से आग के शोले बुलन्द थे। रसूल[स०] के ख़ानदान की औरतें क़ैद की जा रही थीं और सदाक़त की ज़बान बुलन्द आवाज़ से पुकार रही थी बेशक-

"दीन पनाह अस्त हुसैन[अ०]"

फ़ुरू-ए-दीन

मौलाना सै0 इब्ने हसन जारचवी साहब क़िब्ला

ख़ुमुस

इस्लामी बैतुलमाल की आमदनी के ज़रिये ज़कात व सदक़ात थे। दुनिया की तारीख़ पढ़ने से मालूम होता है कि वक़्त के बादशाह और हाकिम जिनका ख़ज़ानों पर क़ब्ज़ा होता है आहिस्ता-आहिस्ता उन ख़ज़ानों से खुद भी फायदा उठाने लगते हैं और उसको आम लोगों की भलाई और कामयाबी पर ख़र्च नहीं करते। इस्लाम ने इस ख़राबी को पूरी तरह बन्द करना चाहा। और ज़कात व सदक़ात की आमदनी रसूल[स°] पर जो उस वक़्त अमीरे इस्लाम थे और आले मुहम्मद[अ°] पर जिनको आगे चलकर अमीरे इस्लाम होना था बिल्कुल हराम कर दी। लेकिन रसूले इस्लाम[स°] भी इन्सान थे, फ़रिश्ता न थे। घर-बार रखते थे, बीवियाँ थीं, बच्चे थे और आगे भी जिनको इस्लाम का अमीर होना था उनका भी ज़िन्दगी की ज़रूरतों से ख़ाली होना ज़रूरी न था। इसलिए ज़कात के बजाए उनके लिए ख़ुमुस की आमदनी रखी गई। माले ग़नीमत या दफ़ीनों, कानों और दरियाओं से निकली हुई दौलत या साल भर के ख़र्च के बाद बचे हुए माल के पाँचवे हिस्से को ख़ुमुस कहते हैं और यह मुहम्मद[स°] व आले मुहम्मद[अ°] का हक़ है।

"जान लो कि जो कुछ तुमको माले ग़नीमत मिले उसका पाँचवां हिस्सा ख़ुदा के लिए और उसके रसूल के लिए, और उसके रिश्तेदारों के लिए और यतीमों और मिस्कीनों और मुसाफ़िरों के लिए है।"

(अनफ़ाल-41)

ख़ुमुस का मसअला उन मसाएल में से है जिन पर मुसलमानों ने बहुत बहस की है। यह तो सब मानते हैं कि ज़कात और दूसरे सदक़ात की आमदनी इसलिए थी कि उससे मुसलमानों का जमाअती निज़ाम क़ायम किया जाए, लोगों के फ़ायदे के लिए काम अन्जाम दिये जाएं और ज़रूरतमन्द लोगों की मदद हो सके। तो क्या सिर्फ़ आले मुहम्मद[अ°] सिर्फ़ इस जुर्म में कि वह रसूल मक़बूल[स°] के रिश्तेदार थे इस भलाई के ख़र्च से महरूम कर दिये गये जिससे सब मुसलमानों को फ़ायदा उठाने का हक़ हासिल था? क्या आले मुहम्मद[अ°] को ज़िन्दगी की कोशिशों में कभी मदद की ज़रूरत न पड़ती थी, क्या उनमें फ़क़ीर, मिस्कीन और मुसाफ़िर पैदा होने का इम्कान पूरी तरह ख़त्म हो गया था?

बेशक उन पर ज़कात हराम थी लेकिन उनके ग़रीब और मिस्कीन यानी मोहताज, मजबूर और लोगों के लिए जो अपने इल्मी कामों की वजह से रोज़ी नहीं कमा सकते थे, किसी और आमदनी के रास्ते की ज़रूरत थी यह रास्ता ख़ुमुस था।

ज़कात आले मुहम्मद[अ°] पर क्यों हराम थी? क्या इसलिए कि वह नजासत है, गंदगी है? तो फिर दूसरे मुसलमानों को इस गंदगी के खाने की क्यों इजाज़त थी? क्या आले मुहम्मद[अ°] दूसरे मुसलमानों से अफ़ज़ल व आला थे?

हाँ हाँ वह गंदगी थी और आले मुहम्मद[अ°] ही के लिए गंदगी थी। इसलिए कि उनको बैतुलमाल का पहरेदार होना था। उन पर इस आमदनी को हराम करके ख़ुदा ने हमेशा-हमेशा के लिए बैतुलमाल के रुपये को महफ़ूज़ रहने की ज़मानत कर दी।

अब चूँकि उनके ख़ानदान में भी ज़रूरतमन्द इन्सान हो सकते थे इसलिए ख़ुमुस से उनकी मदद का सामान किया। ख़ुमुस एक तरह कि इत्तेफ़ाक़ी आमदनी है जो खुले बंधों जंग के मैदान में या कानों और दरियाओं से निकली हुई दौलत से होती है और यह थोड़ी और इत्तेफ़ाक़ी आमदनी आले मुहम्मद[अ°] की ज़रूरत के लिए काफ़ी समझी गई।

ख़ुमुस के बारे में मुसलमानों के दो फ़िरक़ों में जो बहस ज़मानों से चली आ रही है वह असल में

हुकूमत और ख़िलाफ़त की बहस है। जब तक उसकी बुनियादी चीज़ (यानी हुकूमत) का फ़ैसला न हो ख़ुमुस पर बहस ही नहीं हो सकती। बेशक ख़ुमुस अल्लाह के रसूल[स०] का हक़ मन्सबे इमामत की हैसियत से थे और इसी मन्सब की हैसियत से ज़कात उन पर हराम थी। आप आले मुहम्मद[अ०] पर ज़कात तो हराम किये देते हैं और यह नहीं सोचते कि इसी हुरमत से उनके इमाम और बैतुलमाल की हिफ़ाज़त करने वाला होने का सुबूत मिलता है।

जब इस्लाम ने मुहम्मद[स०] व आले मुहम्मद[अ०] पर ज़कात हराम और ख़ुमुस जाएज़ कर रखा था उस वक़्त उसकी निगाहों में ये बात थी कि उनको इमामे उम्मत होना है। चूँकि ज़माने के इन्क़ेलाबों ने आले मुहम्मद[अ०] को बैतुलमाल की हिफ़ाज़त करने वाला न होने दिया, इसलिए अब सिर्फ़ "ख़ुमुस व ज़कात" के ज़बानी बहस व मुबाहसे बाक़ी रह गए हैं।[1]

कहा जा सकता है कि बैतुलमाल में सदक़ात के अलावा जिज़्या (टैक्स) और ख़िराज की आमदनी भी तो आती थी। मगर याद रखिये कि यह आमदनी ग़ैरमुस्लिमों से वुसूल होती थी। इस्लामी प्रोग्राम में यह आमदनी मुस्तक़िल न थी, अगर अरबी इम्पीरियलिज़्म के बजाए इस्लाम फैलता तो कुछ दिनों में यह आमदनी ख़त्म हो जाती। ख़लीफ़ा उमर इब्ने अब्दुल अज़ीज़ के ज़माने में जिज़्या की आमदनी इतनी कम हो गई थी कि उस वक़्त के हाकिम चिल्ला उठे थे। इस्लामी प्रोग्राम के मुताबिक़ किसी मुल्क में पहले इस्लाम फैलता है, फिर वहाँ इस्लामी निज़ामे हुकूमत क़ायम होता है। मगर अरबी इम्पेरियलिज़्म ने मुल्कों को फतह करने पर ज़ोर दिया, इसलिए यह आमदनियाँ बाक़ी रहीं। बल्कि तारीख़ तो यह बताती है कि इन आमदनियों के लिए इस्लाम की इशाअत को रोक दिया गया।

मुहम्मद[स०] व आले मुहम्मद[अ०] के प्रोग्राम में यह आमदनियाँ ग़ैर मुस्तक़िल और आरज़ी थीं। उनके सामने यह ख़याल था कि किसी मुल्क में इस्लाम की इशाअत से पहले वहाँ निज़ामे हुकूमते इस्लामी क़ायम ही नहीं हो सकता। वह तलवार के ज़ोर से नहीं बल्कि तरग़ीब व तहरीस के ज़रिये से इशाअते दीन करना चाहते थे।

हज

हज का नज़ारा देखने से ताल्लुक़ रखता है। लाखों आदमी हैं, कोई काला, कोई गोरा, कोई अमीर, कोई ग़रीब, कोई यूरोप और एशिया के बेहतरीन तहज़ीबी शहर से आया है, कोई अफ़्रीक़ा के जंगलों का रहने वाला है। यह सब एक ही तरह के सादा लिबास में हैं और एक ही आलमगीर ज़बान में *लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक* कह रहे हैं। यहाँ शाहो गदा, आक़ा और ग़ुलाम के फ़र्क़ ग़ायब हैं और मुल्की, रंगी और ज़बानी तफ़रक़ों का पता भी नहीं।

उम्र भर में कम से कम एक बार हर साहेबे हैसियत मुसलमान को इस मसावात परवर और अद्ल आफ़रीन इज्तेमाअ में शरीक होने और इस्लाम की हक़ीक़ी तालीम को अमली लिबास में देखने का मौक़ा मिलता है, और यह ख़ुशगवार मन्ज़र मालदार से मालदार इन्सान को भी यह समझाने के लिए काफ़ी है कि अल्लाह की नज़र में सारे इन्सान बराबर हैं, और मुल्की व तबक़ाती तफ़रीक़ें इन्सान की ख़ुद की बनाई हुई हैं।

हज़ारों साल ठोकरें खाने के बाद अक़वामे आलम क़ौमियत और वतनियत के महदूद दायरों से निकलने के सामान कर रही हैं, वह एक मरकज़ बनाने के लिए बेचैन हैं, एक ऐसी ज़बान ईजाद करना चाहती है जो पूरब से पच्छिम तक और उत्तर से दक्षिण तक ख़यालात के तबादले का ज़रिया बन सके। इस्लाम चौदह सौ साल पहले यह नज़रिया दुनिया के सामने अमल की सूरत में पेश कर चुका है। मग़रिब के मुफ़क्किर आज बैनुलअक़वामी इज्तेमाआत (International Conventions) में दुनिया की नजात देख रहे हैं, और यह हज सैकड़ों साल से दुनिया को बैनुलअक़वामी इत्तेहाद की तरफ दावत दे रहा है। मुसलमानों में जब तक रूहे इस्लाम बाक़ी रही यह हज का मौसम उनकी सियासी, तहज़ीबी और तिजारती तरक़्क़ी में बड़ा हिस्सा

---

(1) इस पूरी बहस का ख़ुलासा यह है कि आनहज़रत और उनके रिश्तेदारों पर सदक़ात इसलिए हराम थे कि बैतुलमाल में तसर्रुफ़ का इम्कान बाक़ी न रहे। आले मुहम्मद[अ०] पर हमेशा-हमेशा के लिए सदक़ात का हराम होना यह बताता है कि दीनी हुकूमत दाएमी तौर पर उनके के लिए तय हो चुकी थी।

लेता रहा। हर साल मक्के की सरज़मीन पर सारी दुनिया के अक़लमंद, ताजिर, आलिम और फ़ाज़िल लोग जमा होते थे और एक दूसरे के हालात व ज़रूरियात से वाक़िफ़ होकर मिल्लते इस्लामिया की कामयाबी और तरक़्क़ी के लिए एक साथ कोशिशें करने का मौक़ा पाते थे।

यह सरज़मीन थी जहाँ उलूम व फुनून, अश्या (चीज़ों) व तिजारत, और अख़लाक़ व आदात का तबादला होता था। उस ज़माने में जब वसाएले सफ़र के वसाएल महदूद थे और आमदो रफ़्त इतनी आसान न थी, अहकामे इस्लाम का दूर दराज़ शहरों बल्कि मुल्कों तक फैल जाना इसी हज की बदौलत था। और आज भी इस मौक़े से फ़ायदा उठाकर हम ''मिल्लते इस्लामिया'' में ताज़ा रूह पैदा कर सकते हैं।

मक्कए मोअज़्ज़मा जहाँ बैनुलअक़वामी इज्तेमाअ़ होता है सिर्फ़ एक ही शहर ही नहीं है, बल्कि तौहीदे इलाही और हक़परस्ती का पुराना मरकज़ है। इसके ज़र्रे-ज़र्रे पर दीने फितरत की तारीख़ लिखी हुई है।

उस मुक़द्दस घर की जो आज पूरी दुनिया के लिए सजदागाह बना हुआ है पहले पहल आदम[अ०] ने बुनियाद डाली। फिर इब्राहीम[अ०] और इस्माईल[अ०] ने इसको दोबारा तामीर किया। आख़िर में तौहीद की दावत के सबसे बड़े दाई मुहम्मद रसूलुल्लाह[स०] ने इस जगह को रौनक़ बख़्शी और अली[अ०] जैसे ज़बरदस्त तौहीद परस्त ने ऐन ख़ाना-ए-काबा में विलादत पाई।

जब कोई हाजी उस सरज़मीन पर क़दम रखता है तो उस मक़ाम की पूरी तारीख़ उसकी नज़र के सामने आ जाती है, और वह महसूस करने लगता है कि मैं आज जिस मक़ाम पर सई व तवाफ में मशग़ूल हूँ इस पर बड़े-बड़े अम्बिया, आईम्मा और सुलहा के क़दम पहुँच चुके हैं और जिस ख़ाक पर मैं सजदा कर रहा हूँ वह दुनिया के बहुत से बड़े-बड़े इन्सानों की जबीने नियाज़ से मस हो चुकी है। इस तरह वह अपने आपको एक ऐसी आलमगीर बिरादरी का फ़र्द पाता है जिसका सिलसिला हज़ारों साल से जारी है और कौन जानता है कि कितने हज़ार साल तक जारी रहेगा।

Lady Evelyn Cobbold ने अपनी किताब (Pilgrimage to Mecca) में हज के बारे में नीचे दिये गये ख़यालात ज़ाहिर किये हैं:

''हज के असरात व नतीजे में मुबालग़े की गुन्जाइश नहीं। पूरी दुनिया से आने वाले लोगों को इस ज़बरदस्त इज्तेमाअ़ में जो इस मुबारक मौक़े पर मुक़द्दस जगह पर (जिसको तीन मज़हबों यानी यहूदियत, ईसाईयत और इस्लाम के जद्दे अमजद की याद ने मुक़द्दस बना दिया है) मुनअक़िद होता है शामिल होने और सबके साथ में खुशूअ व खुज़ूअ़ के साथ खुदा की तकबीर व तारीफ़ करने के यह माने हैं कि इन्सान के दिल व दिमाग़ पर इस्लामी उसूल व अज़ाएम का मफ़हूम पूरे तौर पर नक़्श हो जाए और उसको इस सबसे ज़्यादा रूह परवर अमल में शामिल होने का फ़ख़्र हासिल हो जो इन्सान को कभी-कभी ही नसीब होता है।

मौलिदे इस्लाम (मक्का) की ज़ियारत, उस ज़मीन पर चलना जिसको हज़रत मुहम्मद के मुसीबत और परेशानी के दौर की याद ने बरकत वाला बना दिया है, क़ुर्बानी और ईसार के उन शानदार सालों में दोबारा ज़िन्दगी बसर करना और अपनी रूह को उस आसमानी नूर से मुनव्वर करना है जिसने तमाम ज़मीन पर उजाला कर दिया था। लेकिन सिर्फ इतना ही नहीं है। और बातों के अलावा हज उनमें इत्तेहाद व इत्तेफ़ाक़ भी पैदा करता है। अगर कोई चीज़ मुसलमानों की बिखरी ताक़तों को एक और उनके अन्दर हमदर्दी पैदा कर सकती है तो वह हज भी है। इसकी बदौलत उनको वह मरकज़ हासिल होता है जिसके पास वह पूरी दुनिया से आकर जमा होते हैं। यह उनके लिए (एक दूसरे से) मिलने जुलने, पहचान बनाने, ख़यालात का तबादला करने और तजुर्बों का मुक़ाबला करने और आम कामयाबी और कामरानी के लिए अपनी कोशिश को एक करने का एक सालाना मौक़ा देता है। जगह की दूरी यहाँ पर दूर हो जाती है। फ़िरक़ों इख़्तेलाफ़ात नज़र अन्दाज़ कर दिये जाते हैं।

इस ईमानी बिरादरी में जो मुसलमानों को एक बड़ी भाईचारगी की शक्ल में एक करती है और अपनी शानदार मीरास की ख़बर देती है, नस्ल और रंग के फ़र्क़ का नाम व निशान भी बाक़ी नहीं रहता।

जब मज़हबी फ़राएज़ ख़त्म हो जाते हैं तो हर मुल्क के ताजिर तिजारत के मामलों पर बातचीत करते

बक़िया..........पेज 13 पर

क़ानून का मुहाफ़िज, उसूल का पाबन्द

मलाजुल उलमा मौलाना सै0 हसन नक़वी

गुनाह और सवाब का क्या मेयार है? हर चीज़ को अक़्ल जिस हद तक बुरा समझे वह उसी हद तक गुनाह है और जिस हद तक अक़्ल उसको अच्छा समझे उसी हद तक उसके करने में सवाब है अक़्ल का कोई हुक्म खुदा के हुक्म के मुख़ालिफ़ नहीं हो सकता। यानी जिन चीज़ों को अक़्ल जिस हद तक अच्छा समझती है उसी हद तक उसकी अच्छाई का हुक्म अहकामे खुदा से भी मालूम होता है जिस चीज़ की बुराई अक़्ल बताती है। उसी मेयार पर ख़ुदा ने बुराई भी बताई है तो गुनाह उस काम का करना है जो अल्लाह की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हो और सवाब हर उस काम के करने में है जो ख़ुदा की मर्ज़ी के मुताबिक़ हो।

यह कहा जा सकता है कि कुछ ऐसी चीज़ें हैं जिनको दुनिया वाले फ़ायदेमन्द और बेहतर समझते हैं लेकिन ख़ुदा के हुक्म के मुताबिक़ वह बुरी हैं और कुछ चीज़ें ऐसी हैं जिनको दुनिया वाले बुरा और नुक़सानदेह समझते हैं लेकिन ख़ुदा के हुक्म के मुताबिक़ वह अच्छी हैं?

यह तो इन्सानी चाहत और अक़्ल के हुक्म में शक का नतीजा है। बेशक बहुत सी चीज़ें जिनकी अच्छाई और बुराई तक आम लोगों की नाक़िस अक़्ल नहीं पहुँच सकी है तो ऐसी जगह अक़्ल सीधे तौर पर कोई हुक्म लगाती ही नहीं बल्कि यह कहती है कि ख़ुदा चूँकि जानने वाला और हिक्मत वाला है और उसकी तरफ़ का नुमाइन्दा, रसूल[स॰], ग़लतियों से पाक है, इसलिए वह जो तालीम दे वह ज़रूर किसी बुनियाद पर है, इसलिए उसकी बात मानना वाजिब है इसके अलावा जो बात नफ़सानी चाहतों के मुताबिक़ होती है उसे ग़लत अन्देश इन्सान हुक्मे अक़्ल ख़याल करके अच्छाई या बुराई को अक़्ल का हुक्म कह देता है वरना अगर नफ़सानी एहसासात और जज़्बात से हटकर देखा जाए तो अक़्ल के नज़दीक वही काम अच्छा होगा जो अल्लाह के नज़दीक अच्छा हो और हर वह काम जो अल्लाह के नज़दीक बुरा होगा अक़्ल के नज़दीक भी बुरा होगा। मालूम हुआ कि हर काम अच्छा जब ही कहा जा सकता है जब अल्लाह के नज़दीक अच्छा हो और हर काम जब ही बुरा कहा जा सकता है जब अल्लाह के नज़दीक बुरा हो। इसे अक़्ल कभी ख़ुद समझ लेती है और कभी रसूल[स॰] के बयान से, और हर उस काम पर सवाब मिलेगा जो अल्लाह को पसन्द हो और हर वह काम जो सज़ा दिलाने वाला होगा जो अल्लाह के नज़दीक बुरा हो, यानी वह काम सवाब वाला होगा जो अल्लाह की मर्ज़ी के हिसाब से हो और हर वह काम सज़ा वाला होगा जो अल्लाह की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हो।

अब अगर क़ानून के उस मुहाफ़िज़ के किरदार पर ग़ौर किया जाए जो दाएमी और हमेशा रहने वाले क़ानून का मुहाफ़िज़ बनकर आया था तो उसका हर काम और हर बात अल्लाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ मिलेगी। अगर ऐसे क़ानून के मुहाफ़िज़ की ज़िन्दगी का मुतालआ किया जाए तो ऐसा बेदाग़ दामन मिलेगा जिसकी मिसाल नहीं मिल सकती जिसमें कहीं हलका सा झोल और कहीं हल्की सी भी लचक नहीं दिखाई जा सकती है, चूँकि यह बात बहुत ही वसीअ है इसलिए मैं मुख़्तसर तौर पर मिसाल के तौर पर एक वाक़ेआ बयान करता हूँ जिससे रसूले इस्लाम[स॰] की बेदाग़ सीरत की पुख़्तगी और उसूल परवरी का हलका सा अन्दाज़ा किया जा सकता है। *"ऐ रसूल काफ़िरों से कह दीजिए कि जिसकी तुम इबादत करते हो उसकी मैं इबादत नहीं करता और जिसकी मैं इबादत करता हूँ उसकी तुम इबादत नहीं करते और जिनको तुम पूजते हो, उनको मैं कभी पूजने का नहीं और जिसकी मैं इबादत करता हूँ उसकी तुम इबादत करने वाले नहीं। तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन है, और मेरे लिए मेरा दीन।"* (पारह 30 सूरए काफ़िरून)

यह सूरह उस वक़्त नाज़िल हुआ जब काफ़िरों ने इस्लाम को बढ़ते हुए देखा और उसकी तरक़्क़ी पर नज़र की तो सोचे कि क्यों न रसूल[स॰] से एक समझौता कर लिया जाए जिसमें अपनी इज़्ज़त भी बाक़ी रहे और फिर इस्लाम से जुड़ भी जाएं यह सोचकर वह रसूल[स॰] के पास आए और कहा कि आइये हम और आप एक समझौता कर लें एक साल या कुछ दिन आप हमारे ख़ुदाओं की इबादत कर लीजिये फिर हम एक ख़ुदा की इबादत करें। जब रसूल[स॰] इस पर राज़ी न हुए तो उन लोगों ने कहा कि अच्छा एक दिन सिर्फ़ आप हमारे बुतों की पूजा कर लीजिये उसके बाद फिर हम ज़िन्दगी भर आपके ख़ुदा की इबादत करते रहेंगे। इस सूरह में इस पेशकश का जवाब दिया गया।

अगर ज़ाहिरी और सतही तौर पर ग़ौर किया जाए तो सियासी एतेबार से अगर रसूल[स॰] सिर्फ़ एक दिन के लिए (अल्लाह की पनाह) बुतों की पूजा कर लेते तो एक बड़ी जमाअत इस्लाम में दाख़िल हो सकती थी और जमाअत भी वह जमाअत जो बार-बार रसूले इस्लाम[स॰] को तरह-तरह से तकलीफ़ें और अज़ियतें पहुँचाया करती थी। इस्लामी तबलीग़ और इस्लामी क़ानूनों की तरह-तरह से जड़ काटने की कोशिश किया करती थी जिससे बहरहाल तबलीग़ में एक बड़ी रुकावट पड़ जाती थी।

लेकिन अगर ग़ौर किया जाए तो जाहिल काफ़िरों की यह बहुत गहरी सियासी चाल थी अगर रसूले इस्लाम[स॰] उनके कहने से मान लीजिए अमल कर भी लेते तो पूरे इस्लामी निज़ाम की शक्ल ही बदल जाती हक़ीक़त में काफ़िर लोग इस्लाम के सबसे बड़े उसूल को तुड़वाना चाहते थे और एक नया उसूल मनवाना चाहते थे।

इस्लाम ने अगर सबसे पहले जिस उसूल की तबलीग़ की वह तौहीद ही तो था एक ख़ुदा की इबादत की तरफ़ दावत ही तो थी। अगर रसूले इस्लाम[स॰] एक लम्हे के लिए भी (ख़ुदा की पनाह) काफ़िरों की बात मान लेते तो इस्लाम का सबसे पहला उसूल और अहम उसूल, यानी यह कि इबादत सिर्फ़ ख़ुदा-ए-वाहिद ही की हो सकती है ग़ैरे ख़ुदा की इबादत नहीं हो सकती, टूट जाता और फिर मक़सद कभी हासिल ही न हो सकता था क्योंकि फिर तो काफ़िरों के पास इस्लाम की रद्द में यह एक बड़ी दलील हो जाती कि ग़ैरे ख़ुदा की इबादत की जा सकती है इसलिए जब ग़ैरे ख़ुदा की इबादत हो सकती है तो फिर हम उनको क्यों छोड़ें जिनको सैकड़ों साल से हमारे बाप-दादा पूजते आ रहे हैं। इसलिए इस्लाम का सबसे पहला और आख़िरी अहम उसूल टूट जाता इस बुनियाद पर रसूले इस्लाम[स॰] ने साफ़-साफ़ इन्कार करके अपने उसूल का बचाव किया। यही उसूल परवरी क़ानून के मुहाफ़िज़ की ज़िन्दगी में अहम चीज़ है जिसमें पैग़म्बरे इस्लाम[स॰] कमाल की आख़िरी मन्ज़िल पर नज़र आते हैं।

⌘⌘⌘

(बक़िया......... फ़ुरू-ए-दीन) हैं और एक दूसरे से लेनदेन करते हैं। फ़ुक़हा और उलमा दीन और फ़िक़्ह के मसाएल पर, साइंसदाँ साईंस की नयी तरक़्क़ियों पर, अदीब अदबियात पर, महाजन लोग मालियात पर और माहिरीने सियासत क़ौमी और बैनुलअक़वामी सियासत पर बहस करते हैं। हज की रस्म मुसलमानों के लिए सिर्फ़ एक पाक फ़रीज़ा ही नहीं है बल्कि मजलिसे अक़वाम, बैनुलअक़वामी इदार-ए-उलूम व फ़ुनून और बैनुलमअक़वामी ऐवाने तिजारत भी है।"

ऊपर दी गई लाइनों में हज के हवाले से जो कुछ बयान किया गया है वह असल में हज़रत अली[अ॰] के इस ख़ुतबे का मतलब है:

"ख़ुदा ने तुम पर अपने पाक घर का हज फ़र्ज़ कर दिया, वह घर जिसको उसने लोगों के लिए क़िब्ला करार दिया है, वह वहाँ इस तरह आते हैं जैसे जानवर (घाट पर) और इस शौक़ के साथ उस पर टूटते हैं जैसे जंगली कबूतरों की (टुकड़ी ग़ल्ले पर)। इस हज को ख़ुदा ने बन्दों की उस इन्केसारी का निशान और उस यक़ीन की अलामत क़रार दिया है जो उसकी अज़मत और इज़्ज़त के लिए उनके दिल में है, उसने अपनी मख़लूक़ में से अपनी (आवाज़) सुनने वाले चुन लिये, उन लोगों ने उसकी दावत पर लब्बैक कहा और उसके क़ौल के लिए खड़े हुए जहाँ उसके नबी खड़े होते थे, और (नज़्म व तरतीब के लेहाज़ से) उन फ़रिश्तों से मिलते जुलते नज़र आए जो ख़ुदा के अर्श का तवाफ़ करते हैं, यह लोग तिजारतगाहे इबादत में फ़ायदा हासिल कर रहे हैं। और उसके वादे की जगह मग़फ़िरत जल्दी-जल्दी आगे बढ़ रहे हैं। अल्लाह सुब्हानहू तआला ने इस घर को इस्लाम की निशानी और पनाह लेने वालों के लिए अम्न की जगह क़रार दिया है। उसने वहाँ हज अदा करना फ़र्ज़ किया है, और उसके हक़ को वाजिब कर दिया और उसकी ज़ियारत लाज़मी क़रार दे दी। चुनान्चे इरशाद होता है *"ख़ुदा की तरफ से उन लोगें पर अल्लाह के घर का हज वाजिब होता है जो वहाँ जाने की ताक़त रखते हैं। जो शख़्स हज से इन्कार करे तो (याद रखिये) कि ख़ुदा सारी दुनिया से बेपरवा है।"*

⌘⌘⌘

मुख्य समाचार

मग़रिबी मुल्क मुज़ाकेरात को ख़राब न करें

तेहरान में नमाज़े जुमा के ख़तीब आयतुल्लाह इमामी काशानी ने मग़रिबी मुल्कों को ख़िताब करते हुए कहा है कि वह ईरान के पुरअम्न ऐटमी प्रोग्राम के बारे में जारी मुज़ाकेरात की फ़ज़ा को ख़राब न करें। मेहर ख़बर रसाँ एजेन्सी की रिपोर्ट के मुताबिक़ तेहरान युनिवर्सिटी में आज जुमे की नमाज़ आयतुल्लाह इमामी काशानी की इमामत में अदा की गई जिसमें लाखों मोमिनीन ने शिरकत की तेहरान के आरज़ी इमामे जुमा आयतुल्लाह इमामी काशानी ने ख़बरगान कोन्सिल की अहमियत और उसकी कारकरदगी पर रौशनी डालते हुए कहा कि ख़बरगान कोन्सिल इस्लाम की सही सिम्त में हरकत व हिदायत की ज़िम्मेदारी अपने कन्धों पर उठाए हुए है। उन्होंने कहा कि इस्लामी निज़ाम इस वक़्त एक मुजतहिदे आदिल और आगाह शख़्सियत की सरपरस्ती में अपनी तरक़्क़ी के रास्ते पर चल रहा है। आयतुल्लाह इमामी काशानी ने ईरान के पुरअम्न ऐटमी प्रोग्राम के हवाले से मग़रिबी मुल्कों को ख़बरदार किया कि वह ईरान के पुरअम्न एटमी प्रोग्राम के बारे में जारी मुज़ाकेरात की फ़ज़ा को ख़राब करने की कोशिश न करें। उन्होंने कहा कि ग्रुप 5+1 के साथ ईरान के मुज़ाकेरात अच्छी फ़ज़ा में चल रहे हैं और इस अच्छी फ़ज़ा को एक दो मुल्क ख़राब करने की कोशिश कर रहे हैं उन्होंने कहा कि ईरानी हुकूमत ईरानी अवाम को उसूली और मन्तिक़ी हुक़ूक़ नज़रअन्दाज़ नहीं करेगी।

बुश इन्तिज़ामिया की बालादस्ती का ज़माना ख़त्म

ईरानी राष्ट्रपति अहमदी नेजाद ने कहा है कि बुश इन्तिज़ामिया की ग़लत पॉलीसियों की वजह से 'अमरीकी सलतनत' ख़ात्मे पर है और उसकी बालादस्ती का ज़माना ख़त्म हो गया है। ईरानी न्यूज़ नेटवर्क के मुताबिक़ मिस्टर अहमदी नेजाद ने कल चीन के दौरे के दौरान कहा "अमरीका ने ताक़त और ज़ोर ज़बरदस्ती के ज़रिये आलमी मामलों पर जो एकतरफ़ा बालादस्ती क़ायम कर रखी थी उसका ज़माना ख़त्म हो गया है। उन्होंने बुश के ज़माने में होने वाली व्हाइट हाउस की कई ग़लतियों की तरफ़ ध्यान दिलाया, जैसे कि अफ़ग़ानिस्तान और इराक़ की जंग और अमरीकी कारोबार का कमज़ोर पड़ना।

उन्होंने कहा कि अमरीका ने अक्टूबर 2001 को अफ़ग़ानिस्तान पर हमला किया था ताकि अलक़ाएदा के लीडर उसामा बिन लादेन को पकड़ कर दहशतगर्दी को हराया जा सके और उसके दहशतगर्दी के तूफ़ान को तबाह करके तालिबान की हुकूमत को हटाया जाए, अभी तक इनमें से कोई भी मक़सद हासिल नहीं हो सका है। फ़ौजी कमाण्डर एडमिरल माइल मोलिन ने जुलाई में कहा था कि इस वक़्त अफ़ग़ानिस्तान की सूरते हाल बहुत ख़राब है। 2003 में इराक़ पर हमला करके उस पर क़ब्ज़ा कर लिया गया। उसके लिए यह बहाना बनाया गया कि इराक़ कीमियाई और ऐटमी हथियार बना रहा है और उसके अलक़ाएदा के साथ ताल्लुक़ात हैं उस वक़्त के विदेश मंत्री कोलिन पावेल ने संयुक्तराष्ट्र जन्रल असेम्बली को सुबूत भी पेश कर दिये और तेल से मालामाल मुल्क पर हमला कर दिया मगर उसे कोई हथियार नहीं मिला। दस लाख से ज़ियादा आम शहरी और कम से कम चार हज़ार अमरीकी फ़ौजी इराक़ में दहशतगर्दी के ख़िलाफ़ जंग में अपनी जान गंवा चुके हैं हालांकि इराक़ के ख़िलाफ़ सारे अमरीकी इल्ज़ाम झूठ का पुलन्दा साबित हुए हैं।

रोज़ा इफ़्तार में सुन्नी-शिया इत्तेहाद

रेजिनल पास्पोर्ट अफ़सर ज़हूर एच० ज़ैदी के गोमतीनगर स्थित निवास पर रोज़ा अफ़तार का एहतेमाम हुआ। जिसमें सुन्नी-शिया इत्तेहाद का नज़ारा देखने को मिला। रोज़ा इफ़तार के बाद शिया आलिमे दीन मौलाना सै० कल्बे जवाद साहब, नाएब इमाम ईदगाह व इस्लामिक सेण्टर ऑफ़ इण्डिया के जनरल सेक्रेटरी मौलाना ख़ालिद रशीद निज़ामुद्दीन फ़िरंगीमहली, रियासत के कमिश्नर बराए ज़रई पैदावार अनीस अन्सारी, सुन्नी बोर्ड ऑफ़ इण्डिया के अध्यक्ष शहाबुद्दीन ख़ान, इण्डियन कल्चर सोसाइटी के हुसामुद्दीन ख़ान के अलावा दूसरे अफ़सरों और उनके साथियों ने शिरकत की। सुन्नियों की जमाअ़ते मग़रिब की इमामत मौलाना ख़ालिद रशीद साहब ने की और शियों की इमामत क़ाएदे मिल्लत मौलाना कल्बे जवाद साहब ने की।

ईरान की हथियारबंद फ़ौजें जंगी रिहर्सल शुरु करेंगी

ईरान की हथियारबंद फ़ौजें जंगी रिहर्सल शुरु करेंगी जो तीन दिन जारी रहेगी और उसमें तय्यारा शिकन दिफ़ाई निज़ाम का भी इस्तेमाल होगा। यह ख़बर ईरानी मीडिया ने दी। यह रिहर्सल उन ख़यालात के दरमियान हो रही है कि अमरीका या इस्राईल ईरानी न्युकिलियाई तन्सीबात पर हमला कर सकते हैं क्योंकि मग़रिब और इस्राईल का यह कहना है कि ईरान ख़ामोशी के साथ एटम बम बनाने की कोशिश कर रहा है। ख़बर देने वाली एजेन्सी 'इरना' के मुताबिक़ इस फ़ौजी जंगी मश्क़ में पास्दाराने इन्क़ेलाब और ईरान की बाक़ाएदा फ़ौज हिस्सा लेगी। अंग्रेज़ी रोज़नामा ''डेली'' ने बताया कि इस जंगी मश्क़ का मक़सद मुताल्लिक़ा इकाइयों की जंगी तैयारियों को बेहतर बनाना साथ ही नये हथियारों का तजुरबा करना और दिफ़ाइ मन्सूबों का जाएज़ा लेना है। जून में इस्राईली फ़ज़ाइया के जंगी मश्क़ के बाद जिसे ईरान पर हमले की रिहर्सल बताया गया था ईरान के न्युकिलियाई ठिकानों पर मुमकिना हमले के बारे में क़यास आराइयाँ होती रही हैं। ईरान का कहना है कि वह भी हमले का जवाब देगा।

इराक़ के दजील शहर में धमाका

इराक़ में सलाहुद्दीन सूबे में शियों की अक्सरियत वाले दजील शहर में जुमे के दिन एक थाने के बाहर एक कार बम धमाके में 30 लोग हलाक और 47 ज़ख़्मी हो गए। दहशतगर्दी मुख़ालिफ़ यूनिट के सरबराह मेजर अहमद सोभी ने बताया कि राजधानी बग़दाद से 50 किलोमीटर उत्तर में वाक़े इस शहर में उस वक़्त धमाका हुआ जब लोग रमज़ान के मुक़द्दस महीने में शाम के वक़्त इफ़्तार की तैयारियों में लगे थे और सड़कों पर काफ़ी चहल-पहल थी। पुलिस अफ़सरों का ख़याल है कि किसी आत्मघाती हमलावार ने इस धमाके को अन्जाम दिया। लेकिन एक चश्मदीद गवाह ने बताया कि खड़ी हुई एक कार में रखे बम की वजह से धमाका हुआ। पुलिस के ज़राए ने बताया कि धमाके में मारे गए लोगों में मक़ामी शहरी और पुलिस के जवान शामिल हैं।

धमाके की वजह से आस-पास की दुकानों और घरों को भी नुक़सान पहुँचा है। ख़याल रहे कि हालिया दिनों में फ़ौज की सख़्त चौकसी की वजह से तश्द्दुद भरे वाक़ेआत में काफ़ी कमी आयी थी। लेकिन जुमे को होने वाला वाक़ेआ पिछले महीने के दौरान हुए सबसे ख़तरनाक हमलों में से एक था। इसी बीच इराक़ में दो बम धमाकों में कम से कम आठ लोग हलाक हो गए।

नफ़्स की ग़िज़ा खाना है और रूह की ग़िज़ा नमाज़े पंजगाना:

क़ाएदे मिल्लत मौलाना कल्बे जवाद

5-सितम्बर। माहे रमज़ान के पहले जुमे में ख़ुतबे के दौरान क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी साहब ने हम्दे इलाही और सलवात के बाद रमज़ान की फ़ज़ीलत बयान फ़रमायी और लोगों से रमज़ान के महीने में अपने किरदार को संवारने की तलक़ीन की। आपने इस महीने की ख़ुसूसियतों को बयान करते हुए फ़रमाया कि चूँकि इस महीने में क़ुर्आन नाज़िल हुआ इसलिए इस महीने में एक आयत की तिलावत का सवाब पूरे क़ुर्आन के बराबर है। आपने फ़रमाया कि जो शख़्स इस महीने में एक क़ुर्आन ख़त्म करे और उसका सवाब मासूमीन[अ०] को हदिया करे तो जिस मासूम[अ०] को हदिया देगा क़यामत के दिन उस मासूम[अ०] की हिफ़ाज़त में रहेगा।

आपने दुआए सहर की फ़ज़ीलत बयान फ़रमाई और फ़रमाया कि वह दुआए सहर जो इमाम ज़ैनुलआबिदीन[अ०] से मन्क़ूल है उसका पढ़ना बड़ा सवाब रखता है। आपने फ़रमाया कि इस महीने में इन्सान को तौबा व इस्तिग़फ़ार करना चाहिए। इस बारे में आपने मासूम की हदीस का ज़िक्र किया और फ़रमाया कि मासूम इरशाद फ़रमाते हैं कि अगर तुम चाहते हो कि जहन्नम की आग को दुनिया में बुझा दो तो तौबा व इस्तिग़फ़ार करो अगर नदामत व शर्मिन्दगी के साथ तौबा व इस्तिग़फ़ार करते हुए आँसू का एक क़तरा भी निकल आए तो जब तुम जहन्नम में जाओगे तो एक नौजवान नूरानी शक्ल में आयेगा जो तुम्हें नजात देगा। अस्हाब ने पूछा यह नौजवान कौन होगा तो आपने फ़रमाया यह वही आँसू होगा जिसको ख़ुदा तुम्हारी मदद के लिए नौजवान की शक्ल में अता करेगा।

क़ाएदे मिल्लत ने मौत का तज़किरा करते हुए कहा कि ज़िन्दगी की हर चीज़ इस दुनिया में मशकूक है सिवाए मौत के। यानी सिर्फ़ मौत यक़ीनी है लेकिन इन्सान मशकूक चीज़ की फ़िक्र में लगा रहता है और यक़ीनी चीज़ की तरफ़ ध्यान नहीं देता और इसके लिए इन्तिज़ाम नहीं करता।

मासूम की इस वाज़ेह हदीस के बाद भी इन्सान नाफ़रमानी कर रहा है आख़िर क्या बात है, हक़ीक़त यह है, कि क़ुदरत ने दो चीज़ें बनायी हैं नफ़्से इन्सानी और रूह, इन दोनों में बराबर जंग चलती रहती है नफ़्स बुराई की तरफ़ ले जाता है और रूह अच्छाई की तरफ़ खींचती है अब अगर इन्सान गुनाह की तरफ़ चला जाए तो नफ़्स कामयाब और अगर बुराई से बच जाए तो रूह कामयाब है। इस तरह नफ़्स और रूह की जंग बराबर चल रही है।

उन्होंने कहा जिस तरह हम नफ़्स के लिए ग़िज़ा इस्तेमाल करते हैं उसी तरह रूह की ताक़त के लिए नमाज़ की सूरत में ग़िज़ा है। जिस तरह नफ़्स के लिए ग़िज़ा इस्तेमाल की जाती है उसी तरह रूह के लिए भी नमाज़े पंजगाना की सूरत में ग़िज़ा मौजूद है।